



International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519

IJSR 2017; 3(3): 347-349

© 2017 IJSR

www.anantaajournal.com

Received: 29-03-2017

Accepted: 30-04-2017

डॉ. अंजू सेठ

एसोसिएट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग
सत्यवती महाविद्यालय (प्रातः),
दिल्ली विश्वविद्यालय

प्रातिशाख्य और वाक्यावधारणा

डॉ. अंजू सेठ

प्रस्तावना

वेद विश्वसाहित्य के सर्वप्राचीन ग्रंथ हैं, जिनका अनुशीलन भारतीय संस्कृति के ज्ञान तथा भाषा विज्ञान संबंधी तथ्यों के लिए अनिवार्य है। प्रारंभ में आर्यजन गुरु के मुख से वैदिक मंत्रों का अध्ययन कर उन्हें स्मरण रखते थे, परंतु लोकभाषा के विकास के कारणवश संहितात्मक वैदिक मंत्रों की भाषा कठिन प्रतीत होने लगी। इस अवस्था में वर्ण, स्वर, मात्रा, सन्धि छन्दादि नियमों के बिना वैदिक मंत्रों का शुद्ध उच्चारण असंभव हो गया। उस परिस्थिति में प्रातिशाख्यों का उदय हुआ, जो प्राचीनतम ध्वनिवैज्ञानिक अध्ययन को प्रस्तुत करते थे।

ध्वनिचिन्तन व प्रयोगावस्था चिन्तन के साथ साथ प्रातिशाख्यों में वाक्यचिन्तन भी किया गया है। यहाँ वाक्यचिन्तन दो रूपों में उपलब्ध होता है

1. प्रत्यक्ष वाक्यचिन्तन
2. अप्रत्यक्ष वाक्यचिन्तन

इनका विस्तृत विवेचन निम्न प्रकार से है

1. प्रत्यक्षवाक्यचिन्तन

(क) प्रातिशाख्यों में प्रत्यक्ष रूप से 'वाक्य परिभाषा' तथा वाक्य शब्द का उल्लेख नहीं मिलता है। परन्तु फिर भी प्रातिशाख्यों के वचनाधार पर प्रत्यक्ष वाक्यचिन्तन के संकेत अवश्य उपलब्ध होते हैं। सर्वप्रथम ऋक्प्रातिशाख्य का वचन "संहिता पद प्रकृतिः"² विचारणीय है। इस सूत्र को विशिष्ट महत्त्व प्राप्त है जिसका दुर्गाचार्य ने तथा भर्तृहरि ने विशिष्ट विवेचन किया है। दुर्गाचार्य ने निरुक्त की व्याख्या³ में इस सूत्र पर विस्तृत विचार विमर्श किया है और अपना मन्तव्य दिया है कि संहिता अर्थात् वाक्य को मूल मानना अधिक उचित है क्योंकि जब मंत्र की अभिव्यक्ति होती है तब वह मंत्र ऋषि के समक्ष संहिता रूप में (समग्र रूप में, वाक्य रूप में) अभिव्यक्त होते हैं। उन्हें वह मंत्र पदों के रूप में प्रत्यक्ष नहीं होते। अतएव वेद का अध्यापन करने वाले सर्वप्रथम संहिता का ही अध्यापन करते हैं तथा उसी (संहिता) रूप में ही शिष्य उसका ग्रहण करते हैं। यज्ञादि कार्यों में भी मंत्रों का संहिता रूप में प्रयोग व विनियोग किया जाता है। पदों के रूप में मंत्रों का प्रयोग नहीं किया जाता।⁴

दुर्गाचार्य के इस मन्तव्य से स्पष्ट होता है कि वे वाक्य को प्रकृति मानते हैं और पदों को विकृति के रूप में स्वीकार करते हैं। वास्तव में ऋग्वेद की ऋचाओं में वाक् की अखण्डता⁵ इत्यादि की ही घोषणा की गई है। उसके पदों में विभाजन बाद में प्रयोगदृष्टि से किया गया था। अक्षरा व अघ्नया विशेषण वाणी के अखण्ड रूप को द्योतित करते हैं। जो वाक्य ही हो सकता है, पद नहीं।

भर्तृहरि ने भी ऋक् प्रातिशाख्य के इस वचन "संहिता पद प्रकृतिः"⁶ का विवेचन किया है। उनके मत में ऋक् प्रातिशाख्य के इस वचन के आधार पर दो मतों की उत्पत्ति हुई जिनमें एक मतावलम्बी अखण्डवादी

Correspondence

डॉ. अंजू सेठ

एसोसिएट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग
सत्यवती महाविद्यालय (प्रातः),
दिल्ली विश्वविद्यालय

या वाक्यवादी थे तथा दूसरे मत के समर्थक खण्डवादी तथा पदवादी थे। इन दोनों के मतभेद का आधार प्रातिशाख्य के इस वचन का भाव था। 'पदप्रकृति' शब्द को दो प्रकार से ग्रहण किया गया। प्रथमतः षष्ठी तत्पुरुष समास द्वारा तथा द्वितीय बहुब्रीहि समास द्वारा इसे ग्रहण किया गया। षष्ठी तत्पुरुष समास स्वीकार करने पर "पदानां प्रकृति" पदों के प्रकृति (मूल) को संहिता कहते हैं।⁷ यह वास्तव में वैयाकरणों का मत है। द्वितीय मत में 'पदप्रकृतिः' में बहुब्रीहि समास द्वारा इसका अर्थ दिया है; "पदानिप्रकृतिर्यस्याः संहितायाः" अर्थात् जिसके⁸ मूल कारण पद हैं उसको संहिता अर्थात् वाक्य कहते हैं। भर्तृहरि ने इसे पदवादियों का मत माना है तथा इसे वाक्यवादी वैयाकरणों का मत नहीं स्वीकार किया और वास्तव में हमारे ग्रन्थ का मुख्य उद्देश्य वैयाकरणों के मत को सिद्ध व वर्णित करना है। अतएव हमारी दृष्टि में भर्तृहरि के मत को पूर्ण आदर प्रदान करना श्रेष्ठ है। अतः वाक्य ही मूल है पद विकृति है। यही मानना अधिक उचित प्रतीत होता है।

भर्तृहरि पुनः इस तथ्य को स्पष्ट करते हैं कि पतंजलि ने वैयाकरणों को 'पदकार'⁹ शब्द से सम्बोधित किया है अर्थात् पदों को बनाने वाले अथवा वाक्य में से पदों को निकालने वाले। यदि पद प्रकृति होते तो कदापि पतंजलि 'पदकार' न कहते क्योंकि यदि पद नित्य हैं तो उन्हें बनाने की कोई आवश्यकता नहीं रह जाती। उनकी अनित्यता के कारणवश ही उनका अपोद्धार करना पड़ता है और वैयाकरण पदकार कहलाते हैं। यदि पद मौलिक होते तो वैयाकरणों को 'वाक्यकार' कहा जाता।¹⁰

उपर्युक्त तथ्यों के अतिरिक्त यह भी विचारणीय है कि ऋक् प्रातिशाख्य के इस सूत्र में "संहिता" शब्द का प्रथम प्रयोग है। पद शब्द का बाद में प्रयोग किया गया है जो संभवतः सूचित करता है कि ऋक् प्रातिशाख्यकार संहिता की ही प्रधानता व्यक्त करना चाहते थे। यथा- "वाक्यपदीय" में शब्द का प्रथम प्रयोग है तथा पूरे ग्रंथ में 'वाक्य' को ही प्रधानता दी गई है।

(ख) तैत्तिरीय प्रातिशाख्य में संहिता के प्रकार का विवेचन करते हुए उसे चार प्रकार का बताया है, जिसमें 'पदसंहिता' भी है।¹¹ जिसमें स्पष्ट किया गया कि नाना पदों के मेल से जो संयोग होता है वह पदसंहिता है।¹² अभिप्राय यह है कि नाना पदों का यह संयोग वाक्य ही हो सकता है।

(ग) ऋक् प्रातिशाख्य में 'आचार्यपद' की समृद्धि को प्राप्त करने हेतु व्यक्ति के लिए कुछ विशेषताएँ बताई गई हैं। जिसमें पदक्रम के विभाग का ज्ञान भी अनिवार्य तत्त्व है। पदक्रम को कोई भी आचार्य बिना वाक्य के प्रयुक्त नहीं कर सकता।¹³ अतएव इस वचन द्वारा भी वाक्य की ओर संकेत किया गया है।

2. अप्रत्यक्ष वाक्यचिंतन

प्रातिशाख्यों में अप्रत्यक्षरीति से वाक्यचिंतन भी किया गया है। इनमें पद की स्पष्ट परिभाषा उपलब्ध होती है तथा नाम, आख्यात, पदविभाग उपसर्ग, निपात का विस्तृत विवेचन प्रातिशाख्यों में उपलब्ध होता है।¹⁴ जिनके माध्यम से अप्रत्यक्ष रूप से वाक्यचिंतन किया गया क्योंकि ये चारों पदविभाग 'वाक्य' के ही महत्त्वपूर्ण अंग हैं।

ऋक् प्रातिशाख्य में नाम के लक्षण प्रसंग में कहा गया 'जिससे वक्ता द्रव्य का अभिधान करता है'¹⁵ वह नाम है। आख्यात की परिभाषा ऋक् प्रातिशाख्य व शुक्लयजुप्रातिशाख्य में प्राप्त होती है।¹⁶ ऋक् प्रातिशाख्यकार के मत में वह शब्द आख्यात है, जिसके द्वारा वक्ता क्रिया (भाव) का अभिधान करता है तथा जो धातु से समन्वित होता है।

शुक्लयजुप्रातिशाख्य में आख्यात को क्रिया की प्रधानता से युक्त माना गया है।¹⁷ जो वैयाकरणों हेतु स्रोत सिद्ध हुआ। ऋक् प्रातिशाख्य में इसी प्रकार कहा गया कि प्र, अभि, आ, परा, निः, दुः, अनु, वि, उप, अप, सम, परि, प्रति, नि, अति, अधि, सु, उत, अव, और अपि ये बीस उपसर्ग हैं जो दो (नाम और आख्यात) के साथ प्रयुक्त होकर अर्थ के वाचक हैं।¹⁸ इनके अतिरिक्त सारे निपात हैं।¹⁹ शुक्लयजुप्रातिशाख्य में भी ऋक् प्रातिशाख्य का अक्षरक्षः अनुकरण कर चारों पदविभागों का वर्णन उपलब्ध है।²⁰

अतः पदविभागों के वर्णन द्वारा प्रातिशाख्यों में अप्रत्यक्षतया वाक्यचिंतन किया गया। आख्यात का विवेचन वाक्यवादियों हेतु प्रेरणापुंज सिद्ध हुआ क्योंकि भर्तृहरि ने 'आख्यात' में क्रिया तत्त्व की प्रधानता की घोषणा की है।²¹ आख्यात तत्त्व का प्रातिशाख्य में किया गया यही वर्णन 'आख्यातवाद'²² का स्रोत बन गया।

व्यवहार दृष्टि से वाक्यचिंतन

वाजसनेयी प्रातिशाख्यकार ने तिङन्त से सम्बन्धित स्वर की व्यवस्था हेतु वाक्यचिंतन किया है, जिसका विवेचन इस प्रकार है अतिङन्त पद से परे आने वाला तिङन्तपद सर्वानुदात्त हो जाता है। इसके विपरीत पाद या वाक्य के प्रारम्भ में आने वाला तिङन्त पद उदात्तयुक्त होता है।²³ क्योंकि जिस पदसमुदाय में एक तिङन्त पद हो वह एक वाक्य माना जाता है, इसलिए प्रथम तिङन्त के पश्चात् आने वाले प्रत्येक तिङन्त पद से एक नए वाक्य का प्रारम्भ माना जाता है। जिसके परिणामस्वरूप प्रत्येक परवर्ती तिङन्त पद उदात्त युक्त होता है। वाजसनेयी प्रातिशाख्य का यह वचन व्याकरणशास्त्र की वाक्यधारणा में एक व अधिक तिङन्त सत्ता का निर्धारक है। इस सूत्र से प्रेरित होकर सम्पूर्ण एकतिङ्²⁴ की भावना स्पष्ट हो सकी। ऐसे पदसमुदायों में केवल प्रथम तिङन्त पद सर्वानुदात्त होता है।²⁵ यदि वह पाद या वाक्य के आरम्भ में न हो, या उसे उदात्तयुक्त होते हैं²⁶ क्योंकि पाद या वाक्य के आदि में आने वाला संबोधन पद परवर्ती पद के स्वर की दृष्टि से अविद्यमानवत् माना जाता है। अतएव ऐसे सम्बोधन पद से परे आने वाला अथवा एक पद के व्यवधान से युक्त भी तिङन्त पद उदात्तयुक्त होता है।²⁷

इसी प्रकार स्पष्ट किया गया कि वाक्य में 'यद' सर्वनाम से बने रूप से परे आने वाला तिङन्त पद उदात्तयुक्त होता है चाहे ऐसे तिङन्त 'पद' और 'यज्ञ' के रूप के बीच अन्य पदों का व्यवधान भी होता है।²⁸ इसी प्रकार हि और नेत् से परवर्ती क्रियापद उदात्तस्वरयुक्त होता है।²⁹ यदि दो तिङन्त पदों के साथ एक या अन्य का प्रयोग करके उनके वाक्यों के अर्थ में परस्पर विरोध प्रकट किया जाए, तब प्रथम तिङन्तपद उदात्तयुक्त होता है।³⁰

इससे अधिक वाक्यचिंतन की संभावना प्रातिशाख्य युग में असंभव है। वाजसनेय प्रातिशाख्यकार की वाक्यभावना निसन्देह प्रशंसनीय है। इसी

भावना को आगे बढ़ाते हुए स्पष्ट किया गया कि यदि दो तिङन्त पदों के साथ च, वा, अह, एव का प्रयोग कर उनके क्रमशः समुच्चय, विचार, विनियोग अवधारणा अर्थों में सम्बन्ध दिखाया गया हो तब प्रथम तिङन्त पद उदात्तयुक्त होता है।³¹

अतएव प्रातिशाख्यों में वाक्यचिंतन प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष दोनों रूपों में उपलब्ध होता है। प्रातिशाख्यकारों द्वारा इन दोनों रूपों में किया गया वाक्यचिंतन वैयाकरणों के लिए उपयोगी सिद्ध हुआ।

संदर्भ

- 1- Datta Pradyot Kumar³Painini and Pratisakhya p.5 Sanskrit pustak Bhandar Calcutta. 1994.
2. ऋ० प्रा० 2.1
3. दु० वृ० नि० 1.17
4. उच्यते संहितायाः प्रकृतित्वं ज्यायः। आह किम् कारणम्? उच्यते। मन्त्रो ह्यभिव्यज्यमानः पूर्वमृषेर्मन्त्रदुःशः संहितयैवाभिव्यज्यते न पदैः। अतश्च संहितामेव पूर्वमध्यापयन्त्यनूचाना ब्राह्मणा। अधीरते चाध्येतारः। अपि च यज्ञकर्मणि संहितयैव विनियुज्यन्ते मन्त्राः न पदैः। यदि हि पदानिप्रकृतिरभिव्यन्त संहिता पदैरेव मन्त्रोऽभिव्यज्येते पदानि च पूर्वमध्यापयिष्यन्ब्राह्मणा अध्यैष्यन्त चाध्येतारः पदैरेव विन्ययोक्ष्यन्त मन्त्राः कर्मसु। न त्वेतत्सर्वमस्ति। तस्मादेतैर्विशेषहेतुभिः संहितैव प्रकृतिर्न पदानिीति पश्यामः।
5. (i) ऋ० 10.125.3
तां मा देवा व्यदधुः पुरुत्रा भूरिस्थात्रां भूर्यावेशयन्तीम्
(ii) ऋ० 10.114.5-7
सुपर्ण विप्रा कवयो वचोभिरेकं सन्तं बहुधा कल्पयन्ति
6. ऋ० प्रा० 2.1
7. वा० पा० 2.58
पदप्रकृति भावश्च वृत्तिभेदेन वर्णयते।
पदानां संहिता योनिः संहिता वा पदाश्रया।।
8. वा० प० 2.59
पदाम्नायश्च यद्यन्यः संहिताया निदर्शकः।
नित्यस्तत्र कथं कार्यं पदं लक्षणदर्शनात्।।
9. म० भा० 3.1.109
न लक्षणेन पदकारा अनुवर्त्याः
10. वा० प० 2.60
प्रतिवर्णमसंवेद्यः पदार्थप्रत्ययो यथा।
पदेष्वेवमसंवेद्यं वाक्यार्थस्य निरुपगम्।।
11. तैत्ति० प्रा० 24.1.2
अथ चतस्रस्संहिताः। पदसंहिताऽक्षरसंहिता वर्णसंहिताऽसंहिता चेति।
12. तैत्ति० प्रा० 24.3
अथ नानापदसंधानसंयोगः पदसंहितेत्यभिधीयते।
13. ऋ० प्रा० 1.8
पदक्रममविभागज्ञो वर्णक्रमविचक्षणः।
स्वरमात्राविशेषज्ञो गच्छेदाचार्यसम्पदम्।।
14. (i) शु० यजु० प्रा० 3.2
अर्थः पदम्
(ii) तैत्ति० प्रा० 1.54

एकवर्णः पदमिति

(iii) ऋ० प्रा० 12.17

नामाख्यातमुपसर्गोनिपाताश्चत्वार्याहुः

15. ऋ० प्रा० 12.18

तन्नाम येनाभिधाति सत्त्वम्।

16. ऋ० प्रा० 12.16

तदाख्यातं येन भावं स धातुः।

17. शु० यजु० प्रा० 8.46

क्रियाप्रधानमाख्यातमिति।

18. ऋ० प्रा० 12.20

प्राभ्या परा निर्दुरनुव्युपाप सं परि प्रति न्यत्यधि सूदवापि उपसर्गा
विंशतिरर्थवाचकाः सहेतराभ्याम्

19. ऋ० प्रा० 12.21

इतरे निपाताः।

20. (i) शु० यजु० प्राति० 8.46.

क्रियावाचकमाख्यातमुपसर्गो विशेषकृत्।
सत्त्वाभिधायकं नाम निपातः पादपूरणः।।

(ii) ऋ० प्रा० 12.25.

क्रियावाचकमाख्यातमुपसर्गो विशेषकृत्

21. वा० प०

क्रिया प्रधानमाख्यातमित्यभिधीयते

22. वा० प० 2.1

23. वा० प्रा० 6.1

अनुदात्तमाख्यातमामन्त्रितवत्।

24. वा० 2.1.1.

एकतिङ्

25. वा० प्रा० 6.11

प्रकृत्याख्यातमाख्यातपूर्वम्।

26. वा० प्रा० 6.12.

उदाच्चामन्त्रितादनन्तरम्

27. वा० प्रा० 6.13.

एकान्तरादपि

28. वा० प्रा० 6.1

यद्वृत्तोपपदाच्च

29. वा० प्रा० 6.14

हेश्च उत्तरेऽपि

नेत्

30. वा० प्रा० 6.96

द्वयोः पूर्वं समुच्चये

31. (i) वा० प्रा० 6.20

वा० विचारणे

(ii) वा० प्रा० विचारणे

अह विनियोगे

(iii) वा. प्रा० 6.22

एवावधारणे